संस्कृत भाषा शिक्षण की एक नयी दृष्टि

निर्माणवाद

रंजय कुमार पटेल*
शिरीष पाल सिंह**

निर्माणवाद, शिक्षा के क्षेत्र में एक 'नया दर्शन' है। यह सीखने का एक प्राकृतिक या स्वाभाविक सिद्धांत है। निर्माणवाद वह शक्ति है जिसके द्वारा शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के आधार पर रचनात्मक अधिगम किया जा सके। जनसाधारण में यह मिथ्या धारणा बनी हुई है कि संस्कृत भाषा एक अत्यधिक कठिन भाषा है, बिना रटे उसका ज्ञान प्राप्त करना असंभव है। संसार में ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसे सीखना असंभव हो। संस्कृत आयोग (1956 एवं 2012) ने यह सिफ़ारिश की थी कि पारंपरिक संस्कृत ज्ञान को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़ा जाए। इस बिंदु को ध्यान में रखकर इस लेख में 'पुरातन संस्कृत विद्या' एवं 'आधुनिक निर्माणवाद' के बीच एक सेतु का निर्माण करते हुए संस्कृत भाषा शिक्षण को एक नई दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया गया है कि शिक्षक अपनी शिक्षण विधियों में एवं शिक्षार्थी अपने अधिगम व्यवहारों में यत्किंचित परिवर्तन कर सीख सकें।

वैदिक काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में उत्पन्न हुआ हो जितना कि भारत में हुआ है। 'भारत में 2500 ई. पू. से लेकर 500 ई. पू. तक वेदों का वर्चस्व रहा। (लाल, आर.सी. 2015) निस्संदेह भारतीय शिक्षा प्रणाली ने वैदिक काल से वर्तमान काल तक पहुँचने में एक दीर्घकालिक यात्रा पूर्ण की है। परिणामस्वरूप अनेक उतार-चढ़ाव भी देखने को मिलते हैं। विभिन्न काल खंडों में इस संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था की जहाँ पर अनेक विशेषताएँ रही हैं, वहीं पर एक सहचरी के रूप में कतिपय परिसीमाएँ भी एक परंपरा का निर्वहन करते हुए निरंतर चली आती दिखाई पड़ती हैं। कभी शिक्षक को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुल्य बताया गया तो कभी प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों को सिर्फ़ 12 रुपये प्रतिमाह वेतन दिए जाने की सिफ़ारिश की गई। निश्चित रूप से यह कोई व्यक्तिगत टिप्पणी नहीं है, अपितु शिक्षा नीति, 1913 की प्राथमिक शिक्षकों के संदर्भ में की गई सिफ़ारिश है। कभी शिक्षार्थियों से भिक्षाटन कराए गए तो कभी उन्हें निःशुल्क रूप में शिक्षा प्रदान की गई।

---

* *शोधक*, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

** *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

शिक्षा का केंद्र कभी ऋषि आश्रमों को बनाया गया तो कभी बौद्ध मठों को, तो कभी मकतब एवं मस्जिदों को। कभी देशी पाठशालाएँ आर्थिक सहायता न मिलने के कारण बिखर गईं तो कभी वित्तीय सहायता प्राप्त कर सँवर गई। कभी प्राच्य-पाश्चात्य विवाद हुआ तो कभी इनका पोषण किया गया। कभी धर्मों के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती रही तो कभी आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार विभिन्न समयावधि में समय के साथ शिक्षा, शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, शिक्षा के संस्कार, शिक्षा की संरचना, उद्देश्य, पाठ्यचर्या, शिक्षण विधियाँ, शिक्षण संस्थाएँ, शिक्षक एवं शिक्षार्थी का स्थान, शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध, अनुशासन, शिक्षा पर नियंत्रण, प्रशासन, वित्त की व्यवस्था, परीक्षाएँ तथा मूल्यांकन के तरीके इत्यादि सब कुछ बदलते रहे। प्रायःसंस्कृत भाषा शिक्षण को एक परंपरागत एवं कठोर अनुशासन के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। निर्माणवाद के आधार पर किया गया संस्कृत भाषा शिक्षण रूपी कार्य 'शिक्षक-केंद्रित शिक्षा' के स्थान पर 'विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा' के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया है, जिससे इस विषय की शिक्षण प्रक्रिया भी लचीली, प्रभावी एवं अंतर्क्रियात्मक हो सकेगी। निश्चित रूप से यह लेख शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों के मध्य पारस्परिक अंतर्क्रिया को बढ़ावा देगा तथा संस्कृत भाषा के शिक्षण अधिगम के वातावरण को रचनात्मक आधार प्रदान कर सकेगा।

निर्माणवाद का संप्रत्यय

निर्माणवाद अधिगम प्रक्रिया का एक दर्शन है। शिक्षार्थी अपने अनुभवों से जो कुछ पाते हैं या उसके आधार पर अभ्यास एवं त्रुटि के माध्यम से जो कुछ भी सीख रहे हैं वह उस ज्ञान का निर्माण कर रहे हैं। निर्माणवाद ज्ञान और अधिगम के विषय में एक सिद्धांत है, जो एक साथ यह बताता है कि क्या जानना है? और कैसे जानना है? निर्माणवाद बाल-केंद्रित शिक्षाशास्त्र का मुख्य आधारभूत सिद्धांत है। इस व्यवस्था में बच्चों के अनुभवों, जिज्ञासाओं और उनकी सक्रिय सहभागिता को केंद्र में रखकर पठन-पाठन हेतु वातावरण तैयार किया जाता है। निर्माणवाद एक दार्शनिक और वैज्ञानिक स्थिति है, जो यह मानता है कि ज्ञान सक्रिय निर्माण की प्रक्रिया के माध्यम से उत्पन्न होता है। निर्माणवादी सिद्धांत यह मानकर चलता है कि अधिगमकर्ता अपने ज्ञान का निर्माण व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से स्वयं करता है। प्रत्येक शिक्षार्थी के पास अपने विचार और कौशल होते हैं, जिसका उपयोग वे पर्यावरण द्वारा उपस्थित समस्याओं का समाधान कर ज्ञान के निर्माण के लिए करते हैं।

बच्चे आस-पास के परिवेश से जुड़े रहते हैं। खोजबीन करना, सवाल पूछना, करके देखना, अपने अर्थ बनाना बच्चों की स्वाभाविक प्रकृति होती है। निर्माणवाद सीखने-सिखाने के इसी सिद्धांत को कहते हैं जिसमें विद्यार्थी अपने ज्ञान की रचना अथवा निर्माण वातावरण से अंतर्क्रिया करते हुए अपने अनुभवों से स्वयं करता है।

निर्माणवाद तथा वैदिक कालीन शिक्षा

निर्माणवादी शिक्षा 20वीं शताब्दी में हुए शिक्षा आंदोलनों के सामाजिक उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति के रूप में अभ्यास की एक कला है। यह शिक्षा ज्ञान की प्रकृति के संदर्भ में एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार 'सीखना केवल ज्ञान प्राप्त करना ही

नहीं है, बल्कि एक प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाला स्वयं करके एवं मानसिक रूप से संलग्न रहकर ज्ञान का निर्माण करता है। वह अपने ज्ञान के आधार पर ज्ञात अनुभवों को नए अनुभवों के साथ जोड़कर स्वयं का ज्ञान एवं समझ विकसित करता है तथा उस पर चिंतन करता हुआ अपने ज्ञान को पुनः संगठित करता है।' वैदिक काल में शिक्षा आश्रमों के पावन तथा संयमित वातावरण में महर्षियों व आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती थी। वैदिक काल में शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान, विद्या और विनय आदि के रूप में किया जाता था। सामान्यतः बच्चों का परिवार द्वारा विद्यारम्भ संस्कार और गुरुकुलों में उपनयन संस्कार के बाद शिक्षा प्रदान की जाती थी। परंतु जब शिष्य गुरुकुल शिक्षा पूरी कर लेते थे, तब समावर्तन समारोह होता था। इस समारोह में गुरु शिष्यों को यह उपदेश देते थे कि 'स्वाध्यायान् मा प्रमदः (*तैत्तिरीयोपनिषद्*, वल्ली 1, अनुवाक 11)' अर्थात् स्वाध्याय में कभी प्रमाद (आलस्य) मत करना। इसका अर्थ यह है कि उस काल में जीवन भर स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानार्जन किया जाता था। विद्या के विषय में *केनोपनिषद्* में यह कहा गया है कि — 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्' अर्थात् 'विद्या अमृत के समान लाभप्रद है।' इसके अतिरिक्त विद्या को 'सा विद्या या आत्मदर्शिका, सा विद्या या ब्रह्मदर्शिका, ज्ञानं मनुजस्य तृतीय नेत्रं, न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इत्यादि रूपों में भी परिभाषित किया गया है।

निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षा के उद्देश्य

निर्माणवादी शिक्षा व्यवस्था के सभी उद्देश्य 'शिक्षक' अथवा 'शिक्षण-केंद्रित' न होकर 'विद्यार्थी-केंद्रित' होते हैं। जिसमें विद्यार्थियों की रुचियों, अनुभवों एवं उनके पूर्व-ज्ञान आदि को आधार बनाकर शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। उसे अपने जीवन में अपनी रुचियों एवं स्व-प्रयासों के द्वारा वह जो बनना चाहता है, उसके लिए उपयुक्त अवसर या वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। इसी के साथ संस्कृत भाषा शिक्षा में मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक, तीनों पक्षों के विकास पर बल दिया जाता है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या में अपरा (भौतिक) एवं परा (आध्यात्मिक), दोनों प्रकार के विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाता है। डॉ. अल्तेकर के शब्दों में, "ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार, प्राचीन भारत में संस्कृत शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श हैं।" (मित्तल, एस. 2013)

निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षा का पाठ्यक्रम

निर्माणवादी पाठ्यक्रम ज्ञान को विभिन्न विषयों में विभाजित नहीं करता, अपितु उसे एक एकीकृत संपूर्ण पाठ्यक्रम के रूप में देखता है। इस प्रकार निर्माणवादी पाठ्यक्रम एक समग्र एवं व्यापक अवधारणाओं पर आधारित है। इसी के साथ पाठ्यक्रम की दृष्टि से संस्कृत शिक्षा की दो धाराएँ देखने को मिलती हैं। प्रथम, शास्त्रीय विद्यालय आधारित पाठ्यक्रम, जिनमें प्रथमा (प्रवेशिका), मध्यमा (उपाध्याय), शास्त्री और आचार्य की कक्षाएँ एवं परीक्षाएँ संस्कृत के ही माध्यम से चल रही हैं तथा दूसरा, आधुनिक विद्यालय आधारित पाठ्यक्रम, जिनमें कक्षा छह से संस्कृत भाषा का अध्ययन मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से कराया जाता है। संस्कृत शिक्षा के पाठ्यक्रमों में वेद, उपनिषद्, साहित्य, चिकित्सा,

गणित, विज्ञान, खगोल विद्या, शस्त्र विद्या, शास्त्र विद्या, भैषज्य विद्या, आयुर्वेद, शल्य क्रिया, युद्ध नीति, न्याय, अध्यात्म, दर्शन, शिक्षा, शांति के लिए शिक्षा, आचार मीमांसा, व्याकरण, ज्योतिष, अभियांत्रिकी, परमाणु शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्प शास्त्र, वास्तुशास्त्र, योगशास्त्र, कामशास्त्र इत्यादि अनेक विषयों को आधार बनाया जाता है।

निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षक

निर्माणवादी शिक्षा में भी शिक्षक की भूमिका ज्ञान के स्रोत से खिसककर सहयोगकर्ता की हो गई है। शिक्षक एक 'सुगमकर्त्ता' अथवा 'संसाधन प्रदाता' के रूप में बच्चों को सीखने हेतु यथोचित सामग्री एवं सीखने की सहज परिस्थितियों को उपलब्ध कराने और निरंतर उनका सतत एवं व्यापक मूल्यांकन करते हुए, उन्हें अपनी क्षमताओं के विकास के अवसर उपलब्ध कराने की महती भूमिका का निर्वहन करता है। इसमें शिक्षक मार्गदर्शन करने का प्रयास करता है तथा मार्गदर्शन भी वह तभी करता है, जब उसकी ज़रूरत हो। यह व्यवस्था अप्रासंगिक एवं अनायास मार्गदर्शन का विरोध करती है। इसमें शिक्षक, शिक्षार्थी की स्वतंत्रता एवं नेतृत्व गुणों में अभिवृद्धि करता है तथा शिक्षार्थी की प्रतिक्रिया को पहले प्राथमिकता देता है। वह मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक के मनोभावों को समझकर मार्गदर्शन करने वाला, बालक की जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने वाला, बालक के विचारों एवं परेशानियों के प्रति संवेदनशील, ज्ञान के निर्माण का सरलीकरण करने वाला, एक मार्गदर्शक, अभिप्रेरक की भूमिका निभाने वाला तथा स्वतंत्रतापूर्वक चिंतन को प्रोत्साहित करने वाला होता है। प्राचीन काल में शिक्षक अपने त्यागमय तथा आदर्शमय जीवन के कारण विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे। उनका जीवन अनुकरणीय होता था। संस्कृत शिक्षक को आज भी अपनी वैदिक कालीन परंपरागत प्रतिष्ठा को बनाए रखने के साथ-साथ मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण कर एक पथ-प्रदर्शक तथा मार्गदर्शक की भूमिका को अपनाए जाने की आवश्यकता है, जिससे कि संस्कृत भाषा शिक्षण को निर्माणवादी उपागम से जोड़ा जा सके एवं इसे प्रभावशीलता की दृष्टि से लाभान्वित बनाया जा सके।

निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षार्थी

निर्माणवादी शिक्षा में विद्यार्थी एक विचारक की भूमिका में होता है तथा समूह में कार्य करने को प्राथमिकता देता है। निर्माणवाद में शिक्षार्थी अत्यंत वैयक्तिक ढंग से ज्ञान का सक्रिय रूप से सृजन एवं पुनर्गठन करता है। इस प्रकार यह क्रिया स्पष्ट करती है कि जानने वाले की अंतर्क्रिया तथा आनुभविक तथ्य द्वारा संसार को जाना जाता है। प्रत्येक शिक्षार्थी अपने स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है। निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत विद्यार्थी एक कोरी स्लेट नहीं होता, बल्कि वह अपने साथ पूर्व अनुभव लाता है। वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्व और पूर्व-ज्ञान के आधार पर ज्ञान का निर्माण करता है। संस्कृत भाषा में विद्यार्थियों के लक्षण को इस रूप में अभिव्यक्त किया गया है —

> *"सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।*
> *सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।"*
>
> *(विदुर नीति, अध्याय 8, श्लोक संख्या 6)*

इस प्रकार संस्कृत में भी निर्माणवाद की तरह शिक्षार्थी की सक्रियता तथा निरंतरता को उद्धृत किया गया है। अतः आवश्यकता है कि संस्कृत भाषा शिक्षण में विद्यार्थियों के मार्ग को एक 'सक्रिय

अधिगमकर्ता' के रूप में प्रशस्त किया जाए तथा संस्कृत भाषा शिक्षण में निर्माणवादी उपागम को अपनाया जाए।

निर्माणवाद तथा संस्कृत भाषा शिक्षण की कक्षा एवं विद्यालय का वातावरण

निर्माणवाद 'अधिकतम अधिगम के लिए वास्तविक आधार' प्रदान करता है। निर्माणवाद यह मानता है कि ज्ञान व्यक्तिगत होता है, जो कि अनुभवों के आधार पर विकसित होता है। सीखने वाला व्यक्ति जब किसी नवीन परिस्थिति के संपर्क में आता है, तब उसके पास जो भी संचित पूर्व-ज्ञान है उसका स्मरण उसे अनायास रूपों में ही हो जाता है। इस प्रकार नवीन ज्ञान की संरचना पूर्व-ज्ञान के एकीकरण से होती है। परिस्थितियाँ एवं वातावरण ज्ञान के निर्माण में सहायक होती हैं। मस्तिष्क जिन सूचनाओं को उपयोगी समझता है, उन्हें ग्रहण करता है एवं जिन सूचनाओं को उपयोगी नहीं समझता, उन्हें सहज ही रूप में अनदेखा कर देता है। नए अनुभवों के आधार पर मस्तिष्क ज्ञान का परीक्षण करता है और आवश्यकता होने पर उनमें सुधार भी करता है। कक्षा में प्रजातांत्रिक वातावरण होता है और विद्यार्थी स्वायत्त होते हैं। इस प्रकार निर्माणवादी संस्कृत भाषा शिक्षण की कक्षा में ज्ञान का निर्माण एक गतिशील, सदैव परिवर्तनशील, अनुभव आधारित एवं आंतरिक माना जाता है।

निर्माणवाद तथा संस्कृत भाषा शिक्षण एवं अनुशासन

संस्कृत शिक्षा में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संयम से लिया जाता है। शारीरिक संयम से तात्पर्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता है। मानसिक संयम से तात्पर्य इन्द्रिय निग्रह से होता है तथा आत्मिक संयम से तात्पर्य आत्मा के स्वरूप को पहचानने से होता है। वास्तव में, 'अनुशासन' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है शासन के पीछे चलना अथवा निर्धारित नियमों के प्रति प्रतिबद्ध होना। संस्कृत भाषा की शिक्षा व्यवस्था में 'प्रभावात्मक' एवं 'आत्मानुशासन' को विशेष महत्व प्राप्त है। यह व्यवस्था 'दण्डात्मक अनुशासन' को अति विपरीत परिस्थितियों में ही स्वीकार करती है। संस्कृत भाषा अपने अधिगमकर्ताओं में अनुशासन की भावना का निर्माण करते हुए यह शिक्षा प्रदान करती है कि—

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।"

(*मनुस्मृति*, अध्याय 2, श्लोक संख्या 121)

तदनंतर अनुशासन की अगली कड़ी के रूप में यह अभिव्यक्त किया जा सकता है कि —

"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।।"

(*मनुस्मृति*, अध्याय 4, श्लोक संख्या 92)

निर्माणवादी शिक्षण व्यवस्था में भी 'मुक्त अनुशासन' एवं 'आत्म अनुशासन' का मिला-जुला स्वरूप देखने को मिलता है। अनुशासन के विशेष संदर्भ में शिक्षकों की नज़र शिक्षार्थियों पर सदैव बनी रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृत द्वारा स्थापित अनुशासन निर्माणवाद के लिए धरातल का काम करता है।

निर्माणवादी संस्कृत शिक्षा और अधिगम का आकलन

प्राचीन काल में आज की तरह परीक्षाएँ नहीं होती थीं। सर्वप्रथम तो गुरु ही मौखिक रूप से प्रश्न पूछकर

यह निर्णय करते थे कि शिष्य ने ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं। इसके बाद उसे विद्वानों की सभा में उपस्थित किया जाता था। ये विद्वान इन शिष्यों से प्रश्न पूछते थे और संतुष्ट होने पर उन्हें सफल घोषित करते थे। उनका मानना था कि —

"पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।"

(*चाणक्य नीतिदर्पण*, अध्याय 16, श्लोक संख्या 20)

वर्तमान समय में निर्माणात्मक आकलन को 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009' द्वारा पाठ्यक्रम के अंश के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है, जो कि छात्रों का चहुँमुखी विकास सुनिश्चित करता है। इस तरह का आकलन सतत होता है और सारे स्कूली वर्ष के दौरान नियमित रूप से किया जाता है। निर्माणात्मक आकलन का अर्थ है 'प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में विविध प्रकार की गतिविधियों से जानकारी एकत्र करना।' निर्माणवादी अधिगम के आकलन में गतिशील मूल्यांकन की अवधारणा पर ज़ोर दिया गया है, जो पारंपरिक परीक्षणों से अलग शिक्षार्थियों की वास्तविक क्षमता का आकलन करने का एक तरीका है। इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रशिक्षकों को निरंतर और संवादात्मक प्रक्रिया के रूप में आकलन करना चाहिए, जो शिक्षार्थी की उपलब्धि तथा सीखने के अनुभव की गुणवत्ता को मापता है। निर्माणवादी अधिगम का आकलन विद्यार्थियों के कार्यों एवं प्रदर्शनों का पर्यवेक्षण करके रूब्रिक्स, स्व-मूल्यांकन, साथी मूल्यांकन तथा पोर्टफ़ोलियो इत्यादि के आधार पर भी किया जाता है। अंततोगत्वा एक वाक्य में बस यही कहा जा सकता है कि निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य में निर्माणात्मक आकलन परंपरागत रूपों में न होकर 'अधिगम के लिए आकलन' के रूप में होता है, जो कि संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है।

निष्कर्ष

अद्यतन शिक्षा जगत में 'निर्माणवाद' की अवधारणा को सभी ज्ञानानुशासनों के अधिगम संदर्भों में देखा जा सकता है। खास तौर पर *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में 'निर्माणवाद' को एक अनुपम एवं विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है तथा समूचे पाठ्यचर्या की रूपरेखा के विकास में 'निर्माणवाद' को आधार बनाया गया है। 'विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा' को कई बार 'निर्माणवाद' से भी जोड़कर देखा जाता है, जिसे हाल ही में हुई चर्चाओं में 'शिक्षा का नया दर्शन' नाम दिया गया है। परिवर्तन की इस धारा में यदि 'नई शिक्षा' हो सकती है तो 'नया शिक्षक' भी होना ही चाहिए। इसी नई शिक्षा एवं नये शिक्षक की अवधारणा को स्थापित करने के सतत प्रयासों को निर्माणवाद की संज्ञा दी जा सकती है। वर्तमान समय में निर्माणवाद की अवधारणा ने मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा और विज्ञान सहित कई अन्य विषयों को भी प्रभावित किया है।

निस्संदेह इन सभी शैक्षिक विचारों एवं सुझावों के आलोक में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि निर्माणवादी उपागम आधारित शिक्षण व्यवस्था की प्रासंगिकता एवं प्रभावशीलता स्वतः सिद्ध होती है। वैदिक काल से निरंतर चली आ रही संस्कृत शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित है और संस्कृति से हम अलग नहीं हो सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही हैं जो

वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान-विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर संबंध स्थापित करना चाहते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली और वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली के बीच जो अंतर है, वह तो विकास के क्रम में होना स्वाभाविक ही है।

संदर्भ

कौण्डिन्न्यायन, शिवराज आचार्य. 2017. *मनुस्मृति*. चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी.

झा, ए. के. 2009. *कन्स्ट्रक्टिविस्ट एपिस्टेमोलॉजी एंड पेडागॉजी इनसाईट इनटू टीचिंग लर्निंग एंड नोविंग*. अटलांटिक प्रकाशन, नयी दिल्ली.

द्विवेदी, कपिलदेव. 2012. *संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास*. अनिल प्रिंटर्स प्रकाशन, इलाहाबाद. पृ. 117.

मित्तल, एस. 2013. *संस्कृत शिक्षण*. आर लाल बुक डिपो प्रकाशन, मेरठ.

लाल, आर. बी. 2015. *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ*. आर. एस. बुक डिपो प्रकाशन, मेरठ.

शर्मा, मिहिरचन्द्र. 2015. *चाणक्यनीतिदर्पणः (श्रीचाणक्यविरचितः)*. खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई.

शुक्ल, बी. 1979. संस्कृत आयोग का प्रतिवेदन 1956–57 पर भूमिका. संस्कृतभाषी, 11 मई 2018 को http://sanskritbhasi.blogspot.in/2017/08/1956-1957.html से लिया गया है.

सत्यकेतु. 2012. *विदुर नीति*. (मूलतः भाग उद्योग पर्व, महाभारत). प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली.